संजय बंसल और अन्य

बनाम

जवाहरलाल वत्स और अन्य

दिनांकः- 22.10.2007

डॉ अरिजीत पसायत और लोकेश्वरसिंह पंटा, जे. जे

भारत का संविधान 1950

अनुच्छेद- 226- रेस्पोन्डेन्ट नम्बर 1 के पुत्र के अग्नास्त्र से चोटे आई- अन्तर्गत धारा 307 आईपीसी के तहत मामला दर्ज किया गया- अनुसंधान अधिकारी ने आरोपी/अपीलार्थीको छोडकर चार्जशीट पेश की - अपीलार्थी ने अन्यत्र उपस्थिति का आधार लिया था। - प्रत्यर्थी नम्बर 1 ने उच्च न्यायालय के समक्ष रिट याचिका दायर कर मामले में सही और निष्पक्ष तरीके से आगे बढाने का निर्देश देने का अनुरोध किया- उच्च न्यायालय ने अपीलार्थी नम्बर 1 को नाराजगी याचिका दायर करने का निर्देश दिया और विचारण मजिस्ट्रेट के आदेश होने तक रिट याचिका को लबित रखा-शुद्धता-जो उचित नहीं है- उच्च न्यायालय को प्रत्यर्थी नम्बर 1 को नाराजगी याचिका दायर करने का निर्देश देना उचित नहीं है। - यदि सूचनाकर्ता पेश करना चाहता है तो वह पेश कर सकता है। उच्च न्यायालय मामले को लंबित नही रख सकता है। मामले को लंबित रखना मजिस्टेट द्वारा पारित आदेश को जानने के लिए अपनी चिन्ता का संकेत दर्शित

करता है। यह स्पष्ट रूप से इस तथ्य का संकेत है कि उच्च न्यायालय अन्तिम रिपोर्ट को अस्वीकार करना चाहता था। इन परिस्थिति में उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश और मजिस्टेट द्वारा पारित परिणामी आदेश अपास्त किया जाता है। नाराजगी याचिका यदि दायर की जाती है तो मजिस्टेट उच्च न्यायालय के किसी भी टिप्पणी से प्रभावित हुए बिना विधि अनुसार अभिनिर्धारित कर सकता है। दण्ड प्रकिया संहिता 1860,धारा 307 एस.एस., 156, 169, 173 व 190।

प्रत्यर्थी नम्बर 1 के बेटे को कुछ शरारती तत्वों के हाथों से आग्नेय अस्त्रों से चोटें आई। अन्तर्गत धारा 307 आईपीसी एक मुकदमा दर्ज करवाया गया। जॉचअधिकारी ने आरोपी/अपीलार्थी के अलावा अन्यत्र उपस्थिति के आधार पर अन्तिम रिपोर्ट पेश की। अपीलार्थी नम्बर 1 ने उच्च न्यायालय के समक्ष एक रिट याचिका पेश कर यह प्रार्थना दर्ज की कि जॉच एजेंसी को निष्पक्ष और उचित जॉच करने के दिशा-निर्देश प्रदान करे। उच्च न्यायालय ने रेसपोंडेन्ट नम्बर 1 को ट्रायल मजिस्ट्रेट के समक्ष नाराजगी याचिका दर्ज करने के निर्देश दिए और मजिस्ट्रेट का निर्णय आने तक रिट याचिका को लंबित रख दिया।

अपीलार्थी ने इस कोर्ट के समक्ष यह तर्क दिया कि जो निर्देश उच्च न्यायालय के द्वारा दिए गये है लागू नहीं किए जा सकते क्योंकि यह अप्रत्यक्ष रूप से जॉच अधिकारी के द्वारा दी गई अन्तिम रिपोर्ट को अस्वीकार करता है जो कि इस तथ्य का साक्षी है कि उच्च न्यायालय मजिस्ट्रेट के निर्णय जानने के लिए चिंतित है और रिट याचिका को

मजिस्ट्रेट का निर्णय आने तक लंबित रख दिया है। यह निवेदन किया गया कि उच्च न्यायालय द्वारा दिए गए स्पष्ट संकेत को देखते हुए ट्रायल मजिस्ट्रेट उक्त आदेश से प्रभावित होना बाध्य है।

अपील निस्तारित करते हुए न्यायालय द्वारा यह अभिनिर्धारित किया गया किः-

1.1 जब पुलिस के द्वारा मजिस्टेट को अन्तर्गत धारा 173(2)(प) सीआरपीसी के तहत रिपोर्ट भेजी जाती है तो उनके समक्ष कई सारी परिस्थितियॉ उत्पन्न होती है। रिपोर्ट में यह निष्कर्ष निकल सकता है कि अपराध किसी एक विशेष व्यक्ति के द्वारा किया गया हो या फिर कुछ व्यक्तियों के द्वारा । इस प्रकार के मामलो में मजिस्ट्रेट या तो (1) रिपोर्ट को स्वीकार कर सकता है और अपराध का संज्ञान ले सकता है और कार्यवाही को आगे बढा सकता है । (2)या रिपोर्ट से असहमत हो सकता है और कार्यवाही को ड्रोप कर सकता है। (3) या धारा 156(3) के अंतर्गत अग्रिम अनुसंधान के निर्देश दे सकता है और अग्रिम रिपोर्ट पेश करने को कह सकता है। दूसरी तरफ पुलिस की रिपोर्ट यह कह सकती है कि कोई भी अपराध नहीं हुआ है। जब इस प्रकार की रिपोर्ट मजिस्टेट के समक्ष पेश की जाती है तो वह इन तीन में से एक विकल्प को अपना सकता है (1) वह रिपोर्ट को स्वीकार कर सकता है और कार्यवाही को समाप्त कर सकता है। (2) वह रिपोर्ट से असंतुष्ट हो सकता है और यह कह सकता है कि अग्रिम कार्यवाही के लिए पर्याप्त आधार मौजूद है और अपराध का संज्ञान लेकर कार्यवाही को आगे बढा सकता है। (3) वह पुलिस को अन्तर्गत धारा 156(3) के तहत अग्रिम

अनुसंधान करने के निर्देश दे सकता है। अतः इस प्रकार यह सुस्थापित हो चुका है कि अन्तर्गत धारा 173(2) में पुलिस रिपोर्ट प्राप्त होने पर मजिस्टेट अन्तर्गत धारा 190(1) (बी) के तहत संज्ञान ले सकता है भले ही पुलिस रिपोर्ट यह कहे कि आरोपी के खिलाफ कोई केस नहीं बनता है। **(**पैरा **8) (598-**सी**,** डी**,** ई**,** एफ**,** जी**)**

1.2 पुलिस के द्वारा जॉच के दौरान जिन गवाहो के बयान लिए गए थे मजिस्टेट उनका परीक्षण कर सकता है और अपराध का संज्ञान ले सकता है और आरोपी के विरूद्ध कार्यवाही आगे बढाने के निर्देश दे सकता है। धारा 190 (1)(बी)में यह प्रावधान नही है कि मजिस्टेट केवल तब ही संज्ञान ले सकता है जब बाद अनुसंधान जॉच अधिकारी की राय अनुसार आरोपी के खिलाफ मामला बनना पाया जाता हो। मजिस्टेट जॉच अधिकारी के द्वारा दिए गए निष्कर्ष से परे जाकर अपने मस्तिष्क का प्रयोग करते हुए जॉच के दौरान संकलित तथ्यों का जॉच कर उनका संज्ञान ले सकता है। यदि वह उचित समझे तो वह अपनी शक्ति का प्रयोग कर सकता है और अन्तर्गत धारा 190(1)(बी) के तहतसंज्ञान ले सकता है और कार्यवाही को आरोपी के खिलाफ आगे बढाने के निर्देश दे सकता है। इस प्रकार की परिस्थितियों में मजिस्टेट धारा 200 और 202 की प्रक्रिया को अपनाने के लिए बाध्यकारी नहीं होता है यदि वह धारा 190(1)(बी) के तहत संज्ञान ले रहा है तो यद्यपि यह उस पर निर्भर करता है कि वह धारा 200 या 202 के अनुसार कार्यवाही कर सकता है।

1.3. परिवादीे पर इस बात का कोई प्रतिकुल प्रभाव नही पडेगा यदि मजिस्टेट संज्ञान लेने और कार्यवाही को आगे बढाने का निर्णय करता है। लेकिन जब मजिस्टेट यह निर्णय करता है कि प्रकरण में आगे कार्यवाही बढाने के लिए कोई पर्याप्त आधार नहीे है और कार्यवाही को बंद कर देता है या यह पाता है कि प्रकरण में कुछ लोगों के विरूद्ध कार्यवाही को आगे बढाने के पर्याप्त आधार है लेकिन कुछ के खिलाफ आगे बढाने के आधार नहीं है। इन परिस्थितियों में परिवादी पर निश्चित रूप से प्रतिकुल प्रभाव पड सकता है और एफआईआर पूर्ण रूप से या आंशिक रूप से अप्रभावशाली हो सकती है।

1.4. जब मजिस्टेट संज्ञान न लेने का निर्णय करता है और कार्यवाही को बंद कर देता है और यह पाता है कि एफआईआर में जिन लोगों के नाम लिखे हुए है उनमें से कुछ लोगो के खिलाफ कार्यवाही को आगे बढाने का कोई पर्याप्त आधार नहीं बनता है। तो सुचना देने वाले को नोटिस भेजना और उसे सुने जाने का अवसर प्रदान किया जाना अनिवार्य हो जाता है।

1.5. संहिता में आरोप पत्र और अन्तिम रिपाेर्ट जैसे शब्दों का प्रयोग नही किया गया है लेकिन कई राज्यों की पुलिस नियम पुस्तिका जिनमें नियम व विनियम धारा 170 के तहत पुलिस की ओर से पेश रिपोर्ट को आरोप पत्र बताया है। यदि रिपोर्ट अन्तर्गत धारा 169 के तहतभेजी जाती है अर्थात् जब मामले को आगे मजिस्टेट के पास भेजने के लिए पर्याप्त आधार नही होते हैं, इसे कई नामों से जाना जाता है reffered

case, final report or summary!संहिता कीधारा 173 किसी भी नोटिस का संदर्भ नही देता कि पुलिस के द्वारा जो रिपोर्ट प्रस्तुत की गई है उसका विरोध किया जा सकता है। हालांकि पुलिस नियमावली के तहत जारी रिपोर्ट में कहा गया है कि यह संहिता की धारा 173 के अन्तर्गत अंकित है। धारा 173 में विशेष रूप से इस प्रकार के नोटिस के बारे में कुछ भी नहीं लिखा हुआ है।

1.6 सुचना देने वाले को मजिस्ट्रेट द्वारा नोटिस देना और रिपोर्ट के विचार के दौरान सुनने का अवसर प्रदान करना आवश्यक है,इसलिए रिपोर्ट के विचार के दौरान मजिस्टेट के ऊपर नोटिस जारी करने का दबाव बनता है। यदि सूचना देने वाले को यह पता नहींे है कि मामले पर विचार किस समय किया जा रहा है तो स्पष्ट रूप से यह उसका दोष नहीं है या फिर पुलिस के द्वारा नोटिस के संदर्भ में विरोध याचिका देरी से प्रस्तुत की जाती है तो भी इसमें उसका दोष नहीं है। क्योंकि अधिकार केवल सूचना देने वाले को दिया गया है और किसी को नहीं।

भगवन्त सिंह बनाम पुलिस आयुक्त और अन्य AIR(1985) SC 1285; अभिनन्दन झा और अन्य बनाम दिनेश मिश्रा AIR(1968)SC117;मेसर्स इण्डिया सरत प्राइवेट लि0 बनाम कर्नाटक राज्य और अन्य AIR(1989)SC 885 और गंगाधर जनार्दन मात्रे बनाम महाराष्ट्र राज्य और अन्य (2004) 7 SSC 768 पर भरोसा किया।

2.1 उच्च न्यायालय रिट याचिकाकर्ता को विरोध याचिका दायर करवाने के निर्देश नहीं दे सकता है। यह सूचनाकर्ता पर निर्भर करता है कि वह ऐसा करे यदि वह ऐसा

करना चाहता है तो। और उच्च न्यायालय मामले को लंबित नहीं रख सकता और यह नहीं कह सकता कि वह मजिस्टेट के निर्णय का इंतजार कर रहा है। यह स्पष्ट रूप से इस बात का सूचक है कि उच्च न्यायालय अन्तिम रिपोर्ट को अस्वीकार करना चाहता है यद्यपि ऐसा स्पष्ट रूप से उल्लेखित नही किया गया है।**(**पैरा **13) (600** ई**-**डी**)**

2.2 इन परिस्थितियों में जो निर्णय उच्च न्यायालय के द्वारा दिया गया है और इसके परिणामस्वरूप जो निर्णय मजिस्ट्रेट के द्वारा दिया गया है को अपास्त किया जाता है । यदि नाराजगी याचिका दर्ज करवायी जाती है तो उच्च न्यायालय की किसी टिप्पणी से प्रभावित हुए बिना मजिस्टेट के द्वारा विधि अनुसार विचार करना चाहिए। उच्च न्यायालय (पेरा 14) (600 एफ)

आपराधिक अपील न्यायनिर्णयः आपराधिक अपील संख्या 1453/2007

निर्णय एवं अन्तिम आदेश दिनांक 16.03.2007 इलाहाबाद उच्च न्यायालय के क्रिमि. मिस. रिट याचिका संख्या 13182/2006 में पारित से

मुकुल रोहतगी, विनय अरोरा, रमेश सिन्हा, सुदर्शन सिंह रावत, मुकेश कुमार और संजय जैन अपीलार्थी की ओर से

आर. के. गुप्ता, राजीव दुबे, कमलेन्द्र मिश्रा, मनोज के. मिश्रा, जावेद एम. राव, जितेन्द्र मोहन शर्मा और अजित शर्मा प्रत्यर्थीगण की ओर से

न्यायालय का निर्णय डा ॅ० अरिजित पसायत जे. द्वारा दिया गया।

1. अनुमति प्रदान की गई।

2. इलाहाबाद उच्च न्यायालय की डिवीजन बेंच के द्वारा विविघ फौजदारी प्रकरण के संदर्भ में जो निर्णय दिया गया उसे इस याचिका में चुनौती दी गई है। रिट याचिका न0 13182/2006 जो भारतीय संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत दर्ज करवाया गया था(संक्षेप में संविधान) रिट याचिका में रेस्पोन्डेन्ट न0 1 ने यह प्रार्थना की है कि न्यायालय जॉच एजेन्सी को मुकदमा नम्बर 147/2007 अन्तर्गत धारा 307 भारतीय दण्ड संहिता 1860 के संदर्भ में उचित व निष्पक्ष जॉच करने के दिशा निर्देश प्रदान करे जो कि नौचण्डी थाना जिला मेरठ में दर्ज करवायी गई थी। रिट याचिकाकर्ता ने कहा कि उसका बेटा कुछ शरारती तत्वों के हाथों से आग्नेय शस्त्रों से 30.03.2006 को सुबह 10 बजे घायल कर दिया गया था और इस संदर्भ में एक केस दर्ज करवाया गया। प्रारम्भ में श्री आर. पी. सिंह, थाना अधिकारी नौचण्डी ने सूचना देने वाले और घायल व्यक्ति धनंजय के बयान दर्ज किए जिन्होने स्पष्ट रूप से यह बयान दिए कि वर्तमान प्रार्थी के कारण ही वह घायल हुआ था। परिणामस्वरूप जॉच चेतसिंह उपनिरीक्षक को सौंपी गयी। जिसने अन्तिम रिपोर्ट पूर्ववर्ती अभियुक्त अर्थातवर्तमान प्रार्थी को छोडते हुए पेश की। अन्तिम रिपोर्ट अभियुक्त के द्वारा जो दावा अन्यत्र उपस्थिति पर प्रस्तुत किया गया था,उसके आधार पर थी। उच्च न्यायालय के विचार है कि शुरू में रिट याचिकाकर्ता को संदेह था कि जॉच में निष्पक्ष और उचित निर्णय नहीं होगा जैसा कि अभियुक्तगण प्रभावशाली व्यक्ति है। उच्च न्यायालय का विचार है कि क्या अन्यत्र

उपस्थिति का कोई दावा स्वीकार किया जा सकता है या नहीं यह ट्रायल कोर्ट को तय करना है।

तद्अनुसार उच्च न्यायालय ने अन्य बातों के साथ-साथ निम्नलिखित निर्देश दिए है-

उपर दिए गए मामले के संदर्भ में याचिकाकर्ता को निर्देश दिए जाते है कि वह 10 दिन के अन्दर संबंधित मजिस्टेट से सम्पर्क करे, विरोध याचिका दर्ज करे और विद्वान मजिस्ट्रेट घायल व्यक्ति के बयानों पर विचार करे और इंजरी रिपोर्ट को देखे और एक सप्ताह के भीतर विधि अनुसार निर्णय करें और तब तक अन्तिम रिपोर्ट संख्या 32/2006 को प्रभावी नहीं किया जाएगा और यदि अन्तिम रिपोर्ट पहले ही स्वीकार की जा चुकी है तो उसे खारिज कर दिया गया माना जावेगा।

यह न्यायालय विद्वान मजिस्टेट द्वारा दिए गए निर्णय को जानने के लिए उत्सुक है। इस रिट याचिका को हमारे सामने दिनांक 20.04.2007 को प्रस्तुत करे कि विद्वान मजिस्टेट ने रिपोर्ट में क्या विचार किया है।

3. अपील के समर्थन में, अपीलकर्ताओं के विद्वान वकील ने कथन किया कि उच्च न्यायालय द्वारा दिए गए निर्देश कानून में टिकाऊ नहीं हैं।अंतिम रिपोर्ट प्रस्तुत होने पर अपनाई जाने वाली प्रक्रिया का संकेत इस न्यायालय द्वारा कई मामलों में दिया गया है। इस मामले में उच्च न्यायालय ने अप्रत्यक्ष रूप से जो निर्देश दिया वह अंतिम रिपोर्ट को अस्वीकार करना था जैसा कि इस तथ्य से स्पष्ट होगा कि उच्च न्यायालय ने अपनी

चिंता व्यक्त की थी मजिस्ट्रेट द्वारा पारित आदेश को जानने के लिए और संबंधित विद्वान मजिस्ट्रेट की रिपोर्ट के लिए रिट याचिका को लंबित रखा। यह प्रस्तुत किया गया कि उच्च न्यायालय द्वारा दिए गए दृष्टिकोण के स्पष्ट संकेत के मद्देनजर, ट्रायल कोर्ट का प्रभावित होना तय था। वास्तव में उच्च न्यायालय द्वारा आदेश 16.3.2007 को पारित किया गया था। इस न्यायालय ने 20 अप्रैल, 2007 के आदेश द्वारा उच्च न्यायालय के आदेश पर अंतरिम रोक लगाने का निर्देश दिया। उक्त आदेश पारित होने से पहले, ट्रायल कोर्ट ने वास्तव में 16 अप्रैल, 2007 के आदेश द्वारा अंतिम रिपोर्ट को खारिज कर दिया था। उक्त आदेश में विद्वान मजिस्ट्रेट ने स्पष्ट रूप से उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश का उल्लेख किया। इसलिए, मस्तिष्क का कोई स्वतंत्र प्रयोग नहीं था।

4. जवाब में, प्रतिवादी नंबर 1 के विद्वान वकील ने प्रस्तुत किया है कि मजिस्ट्रेट ने उच्च न्यायालय की किसी भी टिप्पणी से प्रभावित हुए बिना मामले का फैसला किया है और उन्होंने उच्च न्यायालय के आदेश से परे क्षेत्राधिकार का प्रयोग किया है।

5. दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (संक्षेप में 'संहिता') में प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज कराने वाले सूचनादाता द्वारा विरोध याचिका दायर करने का कोई प्रावधान नहीं है। यही प्रथा रही है. विरोध याचिका दायर करने से संबंधित संहिता में एक प्रावधान की अनुपस्थिति पर विचार किया गया है। भगवंत सिंह बनाम पुलिस आयुक्त और अन्य, एआईआर (1985) एससी 1285 मामले में इस न्यायालय ने धारा 173(2) के तहत

बनाई गई रिपोर्ट पर विचाराधीन होने पर मुखबिर को सूचना देने की वांछनीयता पर जोर दिया। न्यायालय ने इस प्रकार निर्णय दियाः

> ‘‘...इसलिए, इसमें कोई संदेह नहीं हो सकता है कि जब, धारा 173 की उप-धारा (2)(प) के तहत एक पुलिस स्टेशन के प्रभारी अधिकारी द्वारा की गई रिपोर्ट पर विचार करने पर, मजिस्ट्रेट अपराध का संज्ञान लेने और जारी करने हेतु बाध्य नहीं है, सूचना देने वाले को सुनवाई का अवसर दिया जाना चाहिए ताकि वह मजिस्ट्रेट को अपराध का संज्ञान लेने और प्रक्रिया जारीके लिए अपनी बात रख सके। तदनुसार, हमारा विचार है कि ऐसा मामला जहां मजिस्ट्रेट, जिसे धारा 173 की उप-धारा (2)(प) के तहत रिपोर्ट भेजी जाती है, अपराध का संज्ञान नहीं लेने और कार्यवाही बंद करने का निर्णय लेता है या यह मानता है कि उसके खिलाफ कार्यवाही करने के लिए पर्याप्त आधार नहीं है। प्रथम सूचना रिपोर्ट में उल्लिखित कुछ व्यक्तियों के लिए, मजिस्ट्रेट को सूचना देने वाले को नोटिस देना चाहिए और रिपोर्ट पर विचार के समय उसे सुनने का अवसर प्रदान करना चाहिए...‘‘

6. इसलिए, इसमें कोई संदेह नहीं है कि सूचना देने वाला रिपोर्ट पर विचार के समय नोटिस दिया जाकर सुनवाई का अवसर पाने का हकदार है। इस न्यायालय ने

आगे कहा कि जहां तक घायल व्यक्ति या मृतक के रिश्तेदार का संबंध है, जो मुखबिर नहीं है, स्थिति अलग है। वे किसी भी नोटिस के हकदार नहीं हैं. इस न्यायालय ने महसूस किया कि नोटिस जारी करने और अवसर देने से संबंधित प्रश्न जैसा कि ऊपर वर्णित है, सामान्य महत्व का है और निर्देश दिया कि फैसले की प्रतियां सभी राज्यों में उच्च न्यायालयों को भेजी जाएं ताकि उच्च न्यायालय अपने क्षेत्राधिकार मजिस्ट्रेटों के बीच में प्रसारित कर सकें।

7. अभिनंदन झा और अन्य बनाम दिनेश मिश्रा,ए.आई.आर(1968) सु० को०, 117, इस न्यायालय ने संहिता की धारा 156(3), 169, 178 और 190 के प्रावधानों पर विचार करते हुए माना कि संहिता के तहत किसी मजिस्ट्रेट को ऐसा करने के लिए कहने की कोई शक्ति, स्पष्ट या परोक्ष रूप से, प्रदान नहीं की गई है पुलिस को एक आरोप पत्र दाखिल करना होगा, जब उन्होंने एक रिपोर्ट भेजी होगी संहिता की धारा 169 के अनुसार एक अभियुक्त को मुकदमे के लिए भेजने का कोई मामला नहीं बनता है। मजिस्ट्रेट और पुलिस के कार्य पूरी तरह से अलग-अलग हैं, और मजिस्ट्रेट उन्हें अपनी राय बदलने के लिए मजबूर करके पुलिस के अधिकार क्षेत्र में हस्तक्षेप नहीं कर सकते हैं ताकि वे उसके विचार से.सहमत हो सकें। हालाँकि, वह मामले को आगे बढ़ाने की शक्ति से वंचित नहीं है। यदि मजिस्ट्रेट पुलिस द्वारा बनाई गई राय से सहमत नहीं है तो रिपोर्ट को स्वीकार करने का मजिस्ट्रेट पर कोई दायित्व नहीं है। पुलिस द्वारा राय बनाने के बावजूद संज्ञान लेने की शक्ति, जो जांच का अंतिम चरण है, 190(1)(सी)धारा में प्रदान की गई है।

8. जब धारा 173(2)(प) के तहत पुलिस द्वारा मजिस्ट्रेट को भेजी गई रिपोर्ट उसके सामने रखी जाती है तो कई स्थितियाँ उत्पन्न होती हैं। रिपोर्ट यह निष्कर्ष निकाल सकती है कि अपराध किसी विशेष व्यक्ति या व्यक्तियों द्वारा किया गया प्रतीत होता है और ऐसे मामले में, मजिस्ट्रेट या तो(1) रिपोर्ट स्वीकार करें और अपराध का संज्ञान लें और प्रक्रिया जारी करें, ‘‘‘‘ या (2) रिपोर्ट से असहमत हो सकते हैं और कार्यवाही छोड़ सकते हैं, या हो सकता है धारा 156(3) के तहत अग्रिम अनुसंधान का निर्देश दें और पुलिस से एक और रिपोर्ट बनाने की मांग करें। दूसरी ओर, रिपोर्ट में कहा जा सकता है कि पुलिस के मुताबिक ऐसा प्रतीत नहीं होता कि कोई अपराध किया गया है। जब ऐसी रिपोर्ट मजिस्ट्रेट के समक्ष रखी जाती है तो उसके पास फिर से खुले तीन विकल्पों में से एक को अपनाने का विकल्प होता है, यानि, (1) वह रिपोर्ट स्वीकार कर सकता है और कार्यवाही छोड़ सकता है या (2) वह रिपोर्ट से असहमत हो सकता है और यह विचार करते हुए कि अग्रिम कार्यवाही के लिए पर्याप्त आधार है, अपराध का संज्ञान लें और प्रक्रिया जारी करेंय या (3) वह धारा 156(3) के तहत पुलिस को अग्रिम अनुसंधान करने का निर्देश दे सकता है।इसलिए, स्थिति अब अच्छी तरह से तय हो गई है कि धारा 173(2) के तहत पुलिस रिपोर्ट प्राप्त होने पर एक मजिस्ट्रेट संहिता की धारा 190(1)(बी) के तहत अपराध का संज्ञान लेने का हकदार है, भले ही पुलिस रिपोर्ट इस आशय का है कि आरोपी के खिलाफ कोई मामला नहीं बनता है। मजिस्ट्रेट जांच के दौरान पुलिस द्वारा जांचे गए गवाहों के बयानों को ध्यान में रख सकता है और शिकायत किए गए अपराध का संज्ञान ले सकता है और आरोपी को प्रक्रिया जारी करने

का आदेश दे सकता है।धारा 190(1)(बी) में यह नहीं कहा गया है कि मजिस्ट्रेट किसी अपराध का संज्ञान केवल तभी ले सकता है जब जांच अधिकारी यह राय दे कि जांच में आरोपी के खिलाफ मामला बन गया है।मजिस्ट्रेट जांच अधिकारी द्वारा निकाले गए निष्कर्ष को नजरअंदाज कर सकता है जांच से सामने आने वाले तथ्यों पर स्वतंत्र रूप से अपना मस्तिष्क लगाएं और यदि उचित समझें तो मामले का संज्ञान लें, अपनी शक्ति का प्रयोग करें धारा 190(1)(बी) के तहत आरोपी के विरूद्ध प्रक्रिया जारी करने का निर्देश दें। ऐसी स्थिति में मजिस्ट्रेट संज्ञान लेने के लिए संहिता की धारा 200 और 202 में निर्धारित प्रक्रिया का पालन करने के लिए बाध्य नहीं है।धारा 190(1)(ए) के तहत हालांकि उसके लिए धारा 200 या धारा 202 के तहत कार्रवाई करने का विकल्प खुला है। मैसर्स इंडिया सरत प्रा. लिमिटेड बनाम कर्नाटक राज्य और अन्य, एआईआर (1989) एससी 885, जब मजिस्ट्रेट संज्ञान लेने और मामले को आगे बढ़ाने का निर्णय लेता है तो मुखबिर पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ता है। लेकिन जहां मजिस्ट्रेट फैसला करता है कि‘ मुखबिर के ख़िलाफ आगे बढ़ने के लिए पर्याप्त आधार मौजूद नहीं है और कार्यवाही छोड़ देता है या यह मानता है कि इसके खिलाफ आगे बढ़ने के लिए सामग्री है कुछ और दूसरों के संबंध में अपर्याप्त आधार हैं, निश्चित रूप से पक्षपातपूर्ण होगा क्योंकि दर्ज की गई प्रथम सूचना रिपोर्ट पूरी तरह या आंशिक रूप से अप्रभावी हो जाती है। इसलिए, इस न्यायालय ने संकेत दिया भगवंत सिंह के मामले में (सुप्रा) जहां मजिस्ट्रेट संज्ञान नहीं लेने का फैसला करता है और कार्यवाही को समाप्त करने या यह विचार करने के लिए कि प्रथम सूचना रिपोर्ट में उल्लिखित कुछ व्यक्तियों के खिलाफ

कार्यवाही के लिए पर्याप्त आधार नहीं है, मुखबिर को नोटिस देना और मामले में सुनवाई का अवसर देना अनिवार्य हो जाता है। जैसा कि ऊपर बताया गया है, संहिता में उस संबंध में नोटिस जारी करने का कोई प्रावधान नहीं है।

9. हम यहां जोड़ सकते हैं कि अभिव्यक्ति 'आरोप पत्र' या 'अंतिम रिपोर्ट' का उपयोग संहिता में नहीं किया गया है, लेकिन कई राज्यों के पुलिस मैनुअल के नियमों और विनियमों में इसे पुलिस द्वारा दायर की गई रिपोर्ट माना जाता है। संहिता की धारा 170 के तहत, इसे ''आरोप पत्र'' के रूप में वर्णित किया गया है।धारा 169 के तहत भेजी गई रिपोर्ट के मामले में, यानि, जहां किसी मामले को मजिस्ट्रेट को अग्रेषित करने का औचित्य साबित करने के लिए साक्ष्य की पर्याप्तता नहीं है, इसे विभिन्न प्रकार से कहा जाता है, यानि, संदर्भित आरोप, अंतिम रिपोर्ट या सारांश। धारा 173 में पुलिस द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट पर कोई विरोध जताने के लिए दिए जाने वाले किसी नोटिस का उल्लेख नहीं है।हालाँकि कुछ पुलिस मैनुअल के तहत जारी किए गए नोटिस में कहा गया है कि यह संहिता की धारा 173 के तहत एक नोटिस है, हालाँकि धारा 173 में विशेष रूप से ऐसे नोटिस का प्रावधान नहीं है।

10. जैसा कि भगवंत सिंह (सुप्रा)के मामले में इस न्यायालय द्वारा निर्णय लिया गया , मजिस्ट्रेट को मुखबिर को नोटिस देना होगा और रिपोर्ट पर विचार के समय सुनवाई का अवसर प्रदान करना होगा।वह इस प्रकार नोट किया गया था-

''...मजिस्ट्रेट को सूचना देने वाले को नोटिस देना चाहिए और रिपोर्ट पर विचार के समय उसे सुनने का अवसर प्रदान करना चाहिए...''

11. इसलिए, रिपोर्ट पर विचार के समय मजिस्ट्रेट द्वारा नोटिस जारी करने पर जोर दिया जाता है। यदि सूचना देने वाले को इसकी जानकारी नहीं है कि मामले पर कब विचार किया जाना है, जाहिर है, उसे दोषी नहीं ठहराया जा सकता, भले ही पुलिस द्वारा जारी नोटिस के जवाब में विरोध याचिका देर से दायर की गई हो,लेकिन जैसा कि भगवंत सिंह के मामले (सुप्रा) में संकेत दिया गया है, अधिकार सूचना देने वाले को दिया गया है, किसी और को नहीं।

12. गंगाधर जनार्दन म्हात्रे बनाम महाराष्ट्र राज्य और अन्य,(2004), 7 एससीसी 768 मे उपरोक्त स्थिति को इस न्यायालय द्वारा उजागर किया गया था।

13. उच्च न्यायालय रिट याचिकाकर्ता को विरोध याचिका दायर करने का निर्देश नहीं दे सकता था। ऐसा करना मुखबिर का काम था यदि उसका ऐसा करने का इरादा है। उच्च न्यायालय इस मामले को लंबित नहीं रख सकता था और विद्वान मजिस्ट्रेट द्वारा पारित आदेश को जानने के लिए अपनी चिंता का संकेत दे सकता था। जैसा कि अपीलकर्ताओं के विद्वान वकील ने सही तर्क दिया है, यह स्पष्ट रूप से इस तथ्य का संकेत है कि उच्च न्यायालय अंतिम रिपोर्ट को अस्वीकार करना चाहता था, हालांकि इसे विशेष रूप से वर्णित नहीं किया गया था।

14. इन परिस्थितियों में, हम उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश और मजिस्ट्रेट द्वारा पारित परिणामी आदेश दिनांक 16.4.2007 को रद्द करते हैं। यदि विरोध याचिका दायर की जाती है, तो उस पर विद्वान मजिस्ट्रेट द्वारा उच्च न्यायालय द्वारा की गई किसी भी टिप्पणी से प्रभावित हुए बिना कानून के अनुसार विचार किया जाएगा। हम यह स्पष्ट करते हैं कि हमने मामले के गुण-दोष पर कोई राय व्यक्त नहीं की है। उच्च न्यायालय के समक्ष दायर रिट याचिका को निपटाया हुआ माना जाएगा और लंबित नहीं माना जाएगा

15. तदनुसार अपील का निपटारा किया जाता है।

यह अनुवाद आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस टूल 'सुवास' की सहायता से अनुवादक न्यायिक अधिकारी उमेश वीर (आर.जे.एस.) द्वारा किया गया है।

अस्वीकरण: यह निर्णय पक्षकार को उसकी भाषा में समझाने के सीमित उपयोग के लिए स्थानीय भाषा में अनुवादित किया गया है और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और आधिकारिक उद्देश्यों के लिए, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रामाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य से भी अंग्रेजी संस्करण ही मान्य होगा।